जातिवाद का बढ़ता जहर

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

भारत विभिन्नता में एकता का देश है। यहां पर अनेक जातियों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोग रहते है। जातिव्यवस्था एक सामाजिक बुराई है। भारत में सामाजिक व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए चार वर्णों का विधान किया गया था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। चारों वर्णों के कर्म भी अलग–अलग किये गये थे। ब्राह्मण का कार्य पठन–पाठन, यजन–याजन, क्षत्रिय का कार्य राष्ट्र की रक्षा करना। वैश्य का कार्य समाज का भरण पोषण करना और शूद्र का कार्य सेवा करना था। इस व्यवस्था में न तो कोई ऊँचा था और न ही कोई नीचा। सभी का समाज व्यवस्था में महत्व था। गुण कर्म के अनुसार यह विभाजन किया गया था। किन्तु कालान्तर में राजनैतिक लाभ के लिए इस विभाजन को जन्म से जोड़ दिया गया और ऊँच–नीच का भेदभाव करने के लिए राजनीति शुरू हो गई। स्वतन्त्रता के बाद जाति एक बहुत बडा मुद्दा बन गयी। जातियों को लेकर राजनीति शुरू हो गयी। सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए संविधान द्वारा आरक्षण की व्यवस्था की गई। आरक्षण व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य यह था कि समाज में जो लोग सामाजिक और आर्थिक रूप से कमजोर थे उनको कुछ विशेष छूट देकर राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ दिया जाये। इससे उनके जीवनयापन का स्तर सुधर जायेगा और समाज में सबके साथ कदम से कदम मिलाकर चलने की शक्ति भी उसमें आ जायेगी। किन्तु ऐसा संभव न हो सका। जिन जातियों ने आरक्षण का लाभ लिया वे तो आगे बढ़ गयी और उन्हीं जातियों में जो शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके उनकी स्थिति यथावत् बनी हुई है। वास्तव में आरक्षण उन्हीं को मिलना चाहिए जो इसके योग्य है। किन्तु वास्तविक रूप से जो पिछड़े है उन्हें तो लाभ मिल नहीं रहा है, लाभ वे लोग ले रहे है जो इसके हकदार नहीं है। आरक्षण पर राजनीति शुरू हो गयी है। भारत में हर दल यही दिखाने का प्रयास करते है कि वे ही समाज के कमजोर वर्गों के सबसे बड़े हिमायती है। जातिवाद एक जहर की तरह समाज में व्याप्त हो गया है। गरीबी का सम्बन्ध किसी जाति या धर्म से नहीं होता। गरीब सभी जातियों या धर्मों में है। आरक्षण उन्हें ही मिलना चाहिए। किन्तु

धरातल पर ऐसी स्थिति नहीं है। समय के प्रवाह के साथ वर्ण व्यवस्था का रूप परिवर्तित हो गया और उसने जाति व्यवस्था या जातिप्रथा का रूप धारण कर लिया। विभिन्न व्यवसायों के आधार पर अनेक जातियां और उपजातियां बन गयी। इस व्यवस्था में अनेक दोष भी आ गये है। स्वतंत्रता के बाद जातिवाद एक अभिशाप के रूप में उभरकर आया है। चुनावों के समय इसका घृणित रूप दृष्टिगोचर होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को जातिवाद के विरुद्ध घोषित करता है, जातिवाद को पेट भरकर कोसता है, परन्तु वोट प्राप्त करते समय वह जाति विरादरी के नाम की दुहाई अवश्य देता है। चुनाव हेतु उम्मीदवार का चयन इस बात को ध्यान में रखकर किया जाता है कि सम्बन्धित चुनाव क्षेत्र में किस जाति के कितने वोट है तथा जाति–बिरादरी की दुहाई देकर कितने वोट प्राप्त किये जा सकते है। जातिवाद के नाम पर निर्वाचित व्यक्ति अपने साथ जातिवाद का चोंगा लेकर जाता है। वह जातिवाद के आधार पर अपने वर्ग का भला करना चाहता है। उनके प्रतिनिधित्व की मांग करता है। स्वतंत्रता के पहले जो जाति प्रथा थी वह अब जातिवाद बन गयी है। उसने सामाजिक स्तर पर अस्पृश्यता को जन्म दिया है। आरक्षण के नाम पर जातिवाद की जड़े दिनों–दिन गहरी होती जा रही है। जातिप्रथा के कारण देश को बहुत नुकसान हो रहा है। इससे ऊँच–नीच की भावना पन्नप रही है और छूआछूत की दूषित परंपरा चल गई है। ये दोनों कुप्रथाएं नैतिक दृष्टि से ही नहीं, सामाजिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी नुकसान पहुँचा रही है। इसके कारण हिन्दू समाज का विघटन हुआ है तथा राष्ट्रीय भावना का क्षरण हुआ है। प्रतिवर्ष हजारों शूद्र अथवा हरिजन समाज में सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए हिन्दू धर्म को त्यागकर अन्य धर्मों में दीक्षित हो जाते है। धर्म परिवर्तन की यह प्रक्रिया हिन्दू समाज को खोखला बना रही है। समाज में द्वितीय श्रेणी के नागरिक की भाँति जीवन व्यतीत करने को विवश हरिजन अब यह भी कहने लगे है कि वे हिन्दू हैं ही नहीं। हमारे देश के राजनैतिक नेता प्रत्येक सामाजिक बुराई और पिछड़ेपन के लिए जातिप्रथा को बुरा–भला कहते है परन्तु अपने स्वार्थसिद्ध के लिए जातिवाद को बढ़ावा देते हैं। वोट की राजनीति के लिए जातिप्रथा को बढ़ावा देकर राजनेता लोग अपने स्वार्थ की रोटी सेंकते है। वे यह चाहते है कि जातिप्रथा का जहर नष्ट न हो पाये। राजनीति के क्षेत्र की यह विषम मान्यता हमारी प्रगति के पथ की सबसे बड़ी बाधा बन

गई है। लोकतन्त्रीय व्यवस्था का यह मूलमंत्र है कि निर्वाचन सर्वथा स्वतंत्र और भेदभाव रहित हो परन्तु हमारे देश के कर्णधारों ने केन्द्रीय स्तर से लेकर निचे ग्राम पंचायतों के स्तर तक समस्त निर्वाचनों का आधार जातिवाद को बना रखा है। इसके अनुसार कुछ परिणाम सामने आ रहे है। सरकारी नीतियों में, शिक्षण संस्थाओं में, छात्रवृत्तियों में सर्वत्र आरक्षण एवं पक्षपात की नीतियां बद्धमूल हो रही है। जातिप्रथा को सामाजिक अभिशापों के लिए उत्तरदायी ठहराते हुए वोटों की राजनीति खेलने वाले नेता तथाकथित निम्न एवं दलित वर्गों को सवर्ण हिन्दूओं के विरुद्ध भड़काते रहते है। विषवपन की इस प्रक्रिया के द्वारा वर्ग संघर्ष के बीज बोकर समाज में विघटन किया जा रहा है। अतः जातिवाद का जहर समाप्त होना चाहिए।